विषय है। बहुत संक्षिप्त। कोई विद्वत्ता और बड़ी पढ़ाई आवे और लाखों लोगों को रिझावे, इसलिए वह कहीं समझा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सरस।

(समयसार) १०३ गाथा का उद्धरण दिया है। १०३ गाथा में तो कहा कि किसी द्रव्य की पर्याय दूसरे में संक्रमित नहीं होती। संक्रमित नहीं होती तो करे किस प्रकार? आहाहा! दाढ़ में रोटी का टुकड़ा दाढ़ नहीं करती। दाढ़ की पर्याय यदि उसे करने जाये तो अपनी पर्याय रहती नहीं और रोटी की पर्याय वह दाढ़ करने जाये तो रोटी की पर्याय नहीं, ऐसा हो जाये। वह पर्याय बिना का द्रव्य तो नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यह तो परमसत्य है, बापू! परमसत्य। ओहो! तीन लोक का नाथ केवलज्ञानी परमात्मा ने... आहाहा! प्रत्यक्ष देखा, वैसा वाणी में आया। नहीं तो वाणी और आत्मा दो अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! वाणी को आत्मा कर नहीं सकता, केवली का आत्मा भी वाणी को कर नहीं सकता। आहाहा! तथापि उस वाणी में यह आया। आहाहा! कि हमारी जो यह वाणी की पर्याय है, वह हमारी ज्ञानपर्याय है, इसलिए यह वाणी पर्याय है—ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होवे तो जिसका जो होता है, वह वही होता है। यदि वह आत्मा का हो तो वह आत्मा ही होगा। यह वाणी तो जड़ है। आहाहा! ब्रह्मचारीजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग है, भाई! वीतराग रूखा मार्ग है। उसमें राग और मिथ्यात्व का रस नहीं है। राग और मिथ्यात्व का रस वीतरागमार्ग में नहीं है। आहाहा! अरागी और सम्यग्दर्शन का रस वह जैनदर्शन में है। आहाहा! राग बिना का रस और मिथ्यात्व बिना का समकित का रस, वह वीतरागमार्ग में है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा!

यदि चेतयिता पुद्गलादि का नहीं है तो किसका है? चेतयिता का ही चेतयिता है। यह जाननेवाले का जाननेवाला है। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी आत्मा, वह आत्मा का है। आहाहा! पर को जानने के काल में भी स्वयं अपनेरूप रहकर, पर को स्पर्श किये बिना, पर को जानने के काल में अपने को स्वयं जानता है, पर को जानता नहीं। आहाहा! अपनी ही पर्याय का उस काल में उस प्रकार का स्व-पर प्रकाशक जानने की सामर्थ्य से वह पर्याय ज्ञात होती है। वह पर्याय ज्ञात होती है। ज्ञात होती है, वह चीज़ नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! यह सब गड़बड़ कहाँ सुना था तुमने वहाँ तुम्हारे ढूँढिया में? बात भी कहीं नहीं है, श्वेताम्बर में यह बात ही नहीं है। यह तो सनातन सत्य वीतराग तीन लोक का नाथ..

आहाहा! उनकी वाणी सन्त कह रहे हैं। आहाहा! केवली के विरह में सन्त केवली का विरह टाल देते हैं। आहाहा!

चेतयिता – जाननेवाला जानने में आता है, उसका न हो तो जाननेवाला है किसका? – कि जाननेवाला जो है, वह वही है, स्वयं ही है। वह पर के कारण पर को जानता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! पर को जानता है, ऐसा भी नहीं है, पर को जानने के लिये पर्याय पर में जाती है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! वह तो अपना पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक अपनी पर्याय से ही वस्तु है। उस पर्याय से ही वह वस्तु है। यदि वह पर्याय नहीं तो वस्तु ही नहीं। क्योंकि कार्य पर्याय में होता है और वह कार्य जब पर से हो अथवा पर को करने जाये तो अपना कुछ रहता नहीं और पर का कार्य करने जाये तो उसका कार्य रहता नहीं। आहाहा! ऐसा है।

सिद्धान्त तो यह बहुत रखा है। जिसका जो है, वह वही है। आहाहा! **जिसका जो होता है, वह वही होता है,...** आहाहा! गजब सिद्धान्त है। **जिसका जो होता है, वह वही होता है,...** वही होता है, वह दूसरा नहीं। पर को जानने के काल में ज्ञान ज्ञान का है। इसलिए ज्ञान ज्ञान का है, वह आत्मा का है, उसका (पर का) नहीं। आहाहा! पर के करनेरूप तो नहीं, आत्मा आँख, हाथ हिलावे और पैर हिलावे या मुँह से बोले वह तो है नहीं तीन काल में, परन्तु उन्हें जानता है, उस समय भी स्वयं अपने जानने के अस्तित्व में रहकर, पर में प्रवेश किये बिना, पर और स्व के बीच अत्यन्त अभाव रखकर, अत्यन्त अभाव रखकर अपनी स्व-परप्रकाशक पर्याय अपने से स्वतन्त्र होती है, इसलिए वह आत्मा है। आहाहा! गजब बात है। जैनधर्म सुना न हो, ऐसे अनजान आवे, उसे तो ऐसा लगता है कि यह क्या? यह क्या बकते हैं? किस प्रकार का? बात सत्य, प्रभु! तुझे मिला नहीं, प्रभु! आहाहा!

तू कौन है? कैसे है? किस प्रकार तू है? आहाहा! कौन है? – कि आत्मा। क्या है? – कि मैं तो ज्ञान। किस प्रकार तू है? – कि इस जानने की पर्याय रीति से मैं हूँ। आहाहा! पर को जानने के कारण नहीं और पर को करने के कारण नहीं। आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए। बहुत लम्बी-लम्बी बातें करे और ऐसा करो और वैसा करो, बड़े

गजरथ चलाओ, रथ कराओ, ब्रह्मचर्य लिया हो वहाँ रथ निकालो, रथ। ब्रह्मचारी का रथ। अरे.. भगवान!

यहाँ तो तीन लोक का नाथ चेतयिता अपनी मर्यादा में प्रत्येक समय में पर को करे तो नहीं, परन्तु उस अनन्त को जाने और ऐसा जो अनन्त ज्ञान यहाँ हो, वह जानने का पर के कारण नहीं। वह जानना पर में जाता नहीं, वह अपने में रहकर अपने से अनन्त जानता है। वह जिसका जो है, वह वही है। आहाहा! जिसका जो है, वह उसका है, ऐसा न कहकर; जिसका जो है, वह वही है। आहाहा! गजब बात है। इसकी गम्भीरता गहरी, बहुत गम्भीरता, प्रभु! लोग भले नास्तिक कहे, लोग कहे एकान्त कहे। एकान्त किसी का कर नहीं सकता तो फिर यह पूरे दिन करते हैं न? व्यवहार कहाँ जाये? सुन न अब! व्यवहार, व्यवहार में जाये, व्यवहार खोटे में जाये, सच्चे में व्यवहार नहीं जाता। आहाहा!

यहाँ दो सिद्धान्त कहे। जिसका जो है, वह वही है, और वह दूसरे में संक्रमित नहीं होता, इसका उद्धरण १०३ (गाथा) का दिया। क्योंकि पर्याय पलटकर कहीं पर में नहीं जाती, तो नहीं जाती तो, अपने को छोड़कर दूसरी पर्याय भले निकट हो, तो भी करे किस प्रकार? स्पर्श नहीं करता न! क्योंकि एक-दूसरे में अत्यन्त अभाव है और स्पर्श करे तो भाव हो जाता है, उसका भाव हो जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : संयोग सम्बन्ध है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है, '**नास्ति सर्वोऽपि संबंधः**' २०० कलश। '**नास्ति सर्वोऽपि संबंधः**' ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी नहीं। अभी तो आगे आयेगा, इससे अभी आगे आयेगा। अभी इससे आगे सूक्ष्म आयेगा। आहाहा!

(इस) चेतयिता से भिन्न अब कोई चेतयिता नहीं है, किन्तु वे दो स्व-स्वामिरूप अंश ही हैं। जाननेवाला जानने में आता है, ऐसे दो अंश हैं, पर नहीं। जाननेवाला जानने में आता है, ऐसे दो अंश हुए। आहाहा! पर को नहीं जानता। जाननेवाला जानने में आता है, ये भी दो अंश हुए। है? **किन्तु वे दो स्व-स्वामिरूप अंश ही हैं। यहाँ स्व-स्वामिरूप अंशों के व्यवहार से...** आहाहा! गजब काम है। **व्यवहार से क्या साध्य है?** आहाहा! स्वयं अपने को जानता है, ऐसा भेद डालकर तुझे क्या साध्य है? तुझे सिद्ध क्या करना है? तेरा ध्येय क्या है? आहाहा! है? क्या कहा? स्व-स्वामि अंश अर्थात् कि इसे—स्वयं को

जानता है। ऐसा है न? चेतयिता, चेतयिता को जानता है, ऐसे दो अंश किये, दो अंशों में भेद पड़ा। भेद में साध्य क्या आया? भेद में तुझे क्या फल आया? भेद में तुझे लाभ क्या हुआ? आहाहा!

क्या साध्य है? कुछ भी साध्य नहीं है। कुछ साध्य नहीं है। आहाहा! पर के साथ जानने का सम्बन्ध भी कुछ साध्य नहीं है। पर को जानता हूँ, ऐसा तू निर्णय करने जाये तो भी तुझे लाभ क्या है? तेरा साध्य तुझे आत्मा प्राप्त करना, वह है या राग प्राप्त करना और कषाय प्राप्त करना, वह है? तेरा साध्य तो आत्मा प्राप्त करना है, तो आत्मा स्वयं अपने को जानता है, इस सिद्धान्त में आ जा। आहाहा! समझ में आया? यदि अजैन ऐसा सुने तो ऐसा लगे, यह तो क्या? पूरे दिन कर सकते हैं और कहे करता नहीं। करता तो नहीं, परन्तु जाननेवाला नहीं। ले! कर नहीं सकता, परन्तु जान नहीं सकता, यहाँ तो यह कहते हैं। पर को जानना, वह इसकी मिथ्या बात है। अभी इससे आगे ले जायेंगे कि स्वयं अपने को जानता है, ऐसे दो भाग डालकर तुझे काम क्या है? आहाहा! साध्य क्या है?

तब फिर ज्ञायक किसी का नहीं है। ज्ञायक ज्ञायक ही है... लो! आहाहा! ऐसी बात है। अभी यह तो बाहर के विवाद में पड़े हैं। दया पालन करो और व्रत करो, भक्ति करो और चन्दा बनाओ, पैसा इकट्ठा करो और उससे बड़े-बड़े काम करो। धूल भी नहीं। सुन न! आहाहा!

कहा नहीं अभी? अफ्रीका, उन लोगों ने साठ लाख इकट्ठे किये। छब्बीस दिन रहे। पन्द्रह लाख तो पहले किये थे, छब्बीस दिन में पैंतालीस लाख किये। साठ लाख रुपये किये और बड़ा बाईस लाख का मन्दिर बनाने को। उससे भी पैसा बढ़ गया बहुत। कहा, यह चाहे जो हो परन्तु इसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य है, धर्म-बर्म नहीं। आहाहा! सब प्रेम से सुनते थे। नहीं तो वह तो अनार्य देश अफ्रीका। वहाँ अपने महाजन गये हैं और महाजनों की छह हजार आबादी है। वे सब बेचारे आते हैं। सभी नहीं आते, दिगम्बर हैं। दिगम्बर हैं, दिगम्बर हैं। मार डाला यह बाड़ा बाँध-बाँधकर। यह दिगम्बर और यह श्वेताम्बर और यह स्थानकवासी... अनादि सनातन मार्ग यह है। उसमें से जितने पन्थ निकले, वे पन्थ जैन नहीं हैं। आहाहा!

वीतराग तीन लोक के नाथ के श्रीमुख से निकली हुई बात वह, यह है। पर की दया

पाल सकने की तो बात ही कहीं रह गयी परन्तु पर की दया उसके कारण पलती है, ऐसा जीवत्व आयुष्य के कारण है। यह जानता है, वह भी कहीं रह गया। आहाहा! इसके कारण जीता है, ऐसा जानना, वह भी व्यवहार जानना है। उसमें तुझे साध्य क्या है। आहाहा!

(इस प्रकार यहाँ यह बताया है कि : 'आत्मा परद्रव्य को जानता है' – यह व्यवहार-कथन है;...) कथनमात्र है, सत्य है नहीं। आहाहा! **('आत्मा अपने को जानता है'-इस कथन में भी स्व-स्वामिअंशरूप व्यवहार है;...)** आहाहा! स्व-स्वामिअंश, अंश हो गये। स्वयं अपने को जाने, स्व और स्वामी हो गये, दो भाग पड़ गये। आहाहा! इतनी हद में जाना अब। गुणवन्तभाई! कहाँ कलकत्ता में धन्धा करना और... आहाहा! पर की दया पाल सकने की बात तो तीन काल में जैनधर्म में है नहीं। क्योंकि वह स्वयं द्रव्य है, वह उसका आयुष्य हो, तब तक वहाँ रहेगा। आयुष्य के कारण रहेगा, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। उसके आत्मा की योग्यता उतना काल रहने की है, उतना काल वहाँ रहेगा। आहाहा! उसका यह आयुष्य अथवा उसकी पूरी स्थिति होकर निकल जायेगा। कोई उसे मार सके या जिला सके, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अत्यन्त अन्यमति आया हो तो ऐसे ही पागल कहे। प्रत्यक्ष ही करते हैं पूरे दिन और कहते हैं करता नहीं। अब यह जानने का है, वह भी जानता नहीं, कहते हैं। जानता नहीं इसे? आहाहा!

यहाँ तो यह कहा कि **('आत्मा अपने को जानता है'-इस कथन में भी स्व-स्वामिअंशरूप व्यवहार है;...)** आहाहा! वह भी निषेध है, व्यवहार निषेध है। **('ज्ञायक ज्ञायक ही है'...)** पर को जानता है, यह नहीं। **('ज्ञायक ज्ञायक ही है'...)** स्वयं अपने को जानता है, वह जाननेवाला, जाननेवाला है। वह जाननेवाला जाननहार है। आहाहा! सब फेरफार करके यहाँ तक लाना। जिन्दगी बाड़ा में (सम्प्रदाय में) व्यतीत की हो और बाड़ा का सब पोषण किया हो, अब उसे यहाँ लाना। आहाहा! सब आग्रह छोड़ देना। आहाहा!

('ज्ञायक ज्ञायक ही है'...) यह जाननेवाला तो जाननेवाला ही है। यह जाननेवाला पर को जाननेवाला नहीं। पर की हिंसा करनेवाला नहीं, पर की दया पालनेवाला नहीं परन्तु पर को जाननेवाला भी नहीं। आहाहा! यह तो स्व को जानना, ऐसा कहना व्यवहार है। **('ज्ञायक ज्ञायक ही है'...)** विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)